वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०७, शुक्रवार
दिनांक-१८-०६-१९७६, गाथा-१६ से २१, प्रवचन-१२

१६ वीं गाथा का सारांश। सारांश यह है कि **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान....** जैसा केवलज्ञानी प्रगट परमात्मा है, वैसा ही यह आत्मा परमात्मा समान है, ऐसा ध्यान करना, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान की पर्याय प्रगट है। यहाँ केवलज्ञानरूप ज्ञानमय (आत्मा है)। ज्ञान, वह आत्मा, यह एक व्यवहार हो गया। सद्भूत अनुपचार व्यवहार, वह विकल्प है। ज्ञानमय। जैसा परमात्मा का केवलज्ञानमय स्वरूप है, वैसा ही इस आत्मा का ज्ञानमय... है? **केवलज्ञानादिरूप उस परमात्मा के समान रागादि रहित....** राग से रहित **अपने शुद्धात्मा को पहचान,...** अपना आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसे जानकर **वही साक्षात् उपादेय है।** अपना शुद्ध ध्रुव आत्मा, वही आत्मा को उपादेय है। दृष्टि में वह आदरनेयोग्य है।

मुमुक्षु : हमारा आत्मा केवलज्ञानादि स्वरूप है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहा न, अकेला ज्ञानमय है। इनकी पर्याय प्रगट हुई है, यहाँ (प्रगट) नहीं, परन्तु है केवलज्ञानमय। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसा। यह पर्याय व्यक्तरूप हुई है। यहाँ शक्तिरूप से है। आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल आनन्द, केवल वीर्य, यह अनन्त चतुष्टय स्वभाव, वह आत्मा है। उसका ज्ञान करके, उसे साक्षात् उपादेय (कर)। आहाहा!

अन्य सब संकल्प-विकल्प त्यागने योग्य हैं। अब संकल्प-विकल्प का स्वरूप कहते हैं,.... यह द्रव्यसंग्रह में अर्थ है, वही यह है। किसी-किसी जगह श्रीमद् ने संकल्प-विकल्प का अर्थ ... किया है। संकल्प का अर्थ निर्धारित अध्यवसाय, विकल्प का अनिर्धारित, ऐसा अर्थ किया है। यह ठीक है। अपने यहाँ आया है। १०वें कलश में। समयसार में १०वें कलश में। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, वे मेरे—ऐसा संकल्प और ज्ञेय के भेद से ज्ञान का भेद मालूम पड़ना, ज्ञान का भेद भिन्न-भिन्न ज्ञेय भेद से ज्ञान का भेद मालूम पड़ना, उसे विकल्प कहते हैं। १०वें कलश में है।

मुमुक्षु : दूसरा अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। १०वाँ कलश है न? '**विलीनङ्कल्पविकल्पजालं**' इसका अर्थ किया है। **द्रव्यकर्म,...**—जड़, **भावकर्म,...**— पुण्य-पाप के विकल्प और **नोकर्म...**—वाणी, शरीर **आदि पुद्गलद्रव्यों में अपनी कल्पना करना, इसे संकल्प कहते हैं....** यह मिथ्यात्व का संकल्प लिया है। **और ज्ञेयों के भेद से ज्ञान में भेद मालूम होना...** ज्ञेय भिन्न-भिन्न है, वैसा ज्ञान भिन्न-भिन्न मालूम पड़ता है, **उसे विकल्प कहते हैं।** आहाहा! यहाँ यह अर्थ किया है। संकल्प। **बाह्यवस्तु...** यह द्रव्यसंग्रह में है। **बाह्यवस्तु...** अपने अतिरिक्त बाह्यवस्तु, **पुत्र...** यह पुत्र मेरा है, यह ममत्व, वह संकल्प है। **स्त्री,...** मेरी है। यह स्त्री मेरी है—ऐसा ममत्व, वह संकल्प है। **कुटुम्ब...** मेरा। यह मेरा कुटुम्ब है। आहाहा! **बांधव...** मेरे। यह हमारे भाई हैं। आहाहा! यह संकल्प है। **आदि सचेतन पदार्थ,....** बाह्य, हों! जीववाले पदार्थ। **तथा चाँदी, सोना, रत्न, मणि के आभूषण आदि अचेतन पदार्थ हैं, इन सबको अपने समझे, कि ये मेरे हैं, ऐसे ममत्व परिणाम को संकल्प जानना।** समझ में आया? बाह्य पदार्थ सचेतन और अचेतन, उन्हें अपने जानना-मानना, वह संकल्प है।

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व ... इसमें भी संकल्प का मिथ्यात्व आया न? १० (कलश) में। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म, वे मेरे, उसे संकल्प कहते हैं, वह मिथ्यात्व है। समयसार में १०वें (कलश में) कहा न? और अपने... विकल्प की व्याख्या इसमें यह है। वहाँ ऐसा है कि ज्ञेयभेद से ज्ञान में भिन्न-भिन्न (भेद) भासित होना, वह अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। संकल्प, मिथ्यात्व है। विकल्प, वह अनन्तानुबन्धी का अस्थिरता का विकल्प है। अरे! ऐसी बातें!

मैं सुखी,... उसमें बाह्य में था। बाह्य पदार्थ सचेत या अचेत। वे मेरे, ऐसा जो संकल्प। और **मैं सुखी,...** मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ। **इत्यादि हर्ष-विषादरूप परिणाम...** हर्ष और खेदरूपी भाव, उसे यहाँ विकल्प कहा है। समझ में आया? अपेक्षा से वहाँ ऐसा कहा... मूल तो यह हुआ, परपदार्थ है, वे मेरे—यह संकल्प मिथ्यात्व और ज्ञेयभेद

से ज्ञान में भेद मालूम पड़ना अर्थात् उसमें यहाँ ऐसा लिया मैं सुखी, दुःखी हूँ, ऐसी जो कल्पना, उसे विकल्प कहते हैं। समझ में आया? श्रीमद् में जरा दूसरा अर्थ है थोड़ा। श्रीमद् में है। 'निर्धारित संकल्प, किसी भी अध्यवसाय का निर्धार, उसे संकल्प (कहते हैं)। 'अपूर्ण का निर्धार, वह विकल्प।' ऐसा अर्थ किया है जरा। ... है। द्रव्यसंग्रह की... यह टीका इसके आधार से है न! यहाँ कहना है कि प्रभु! शुद्ध ज्ञानघन स्वरूप आत्मा है, उसका ज्ञान करके उसे आदरना और ध्यान करना और संकल्प-विकल्प छोड़ देना। यह बात है। आहाहा! यह अमरचन्दजी का आया है न? तप में भी सेवा करना, तप छोड़ देना। ऐसी रचना। अमरचन्दजी का है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि स्वयं तप में हो, परन्तु जब सेवा करने का प्रसंग आवे, तब तप छोड़कर सेवा करना, ऐसा महावीर भगवान का मूल कथन है। कौन सेवा करे? क्या लोगों को... ऐसा बड़ा पूरा चित्रण किया है। अमरपाठ या ऐसा कुछ है न?

यहाँ तो कहते हैं कि पर की सेवा कर सके, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगता है कि आहाहा! करो, भाई! अपने को सुख-दुःख हो, उसे छोड़ देना। परन्तु दूसरे को सुख देना। आहाहा! दूसरे की प्राणरक्षा जीव कर सकता है?

मुमुक्षु : व्यवहार से कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कर सकता है अर्थात् क्या? कर नहीं सकता। प्राणरक्षण अर्थात् दया और प्राणसंहार अर्थात् हिंसा। आत्मा पर की प्राणरक्षा और पर का प्राणसंहार नहीं कर सकता। क्योंकि परपदार्थ स्वतन्त्र है। उसमें क्या करे? करे क्या? निश्चय से तो ज्ञायकस्वरूप ज्ञान करे क्या? राग करे, वह भी वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! पर का करे, यह तो प्रश्न है ही नहीं। ज्ञानस्वरूप भगवान, उसे राग का कर्ता ठहराना, यह भी भ्रम है। ज्ञान, ज्ञान करे। ज्ञान, राग करे? समझ में आया? हाँ, राग होता है, उसे जाने। वह तो ज्ञान करता है। राग होता अवश्य है। राग को स्पर्श किये बिना अपने में रहकर राग को जाने। आहाहा! ऐसी चीज़ है। लोगों ने बाह्य में ऐसे धर्म

को घुसा डाला है न? दूसरे को ऐसा करना, दूसरे का यह करना।

मुमुक्षु : दूसरे का क्या कर सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? बापू! तुझे खबर नहीं, भाई!

यह भगवान ज्ञानस्वरूप है, यह राग को करे, यह कहाँ से आया अन्दर? निर्मल शुद्ध स्वभाव, वह विकार को कैसे करे? आहाहा! उसका परिणमन जरा विकार का हो तो उसे जाने कि यह है, इतना। आहाहा! करनेयोग्य है, ऐसा करके राग करे, ऐसा स्वरूप में कहाँ है? आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें! जगत के साथ मिलान करना भारी कठिन।

यहाँ तो यह बात ली है। बाह्य चीज़ सचेतन और बाह्य चीज अचेतन चाँदी, सोना आदि, वे मेरे हैं, उसे यहाँ संकल्प कहा और मैं सुखी, दुःखी हूँ, हर्ष-शोक करना, उसे विकल्प कहते हैं। समझ में आया? वास्तव में मैं सुखी-दुःखी हूँ, यह मान्यता मिथ्यात्व है। और परवस्तु मेरी, यह मान्यता भी मिथ्यात्व है। अर्थात् संकल्प-विकल्प के अर्थ में मिथ्यात्व का इस प्रकार का आता है। आहाहा! समझ में आया? और वहाँ १०वें कलश में कहा, द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म मेरे, यह वास्तव में बाहर (की) चीज़ हुई। है राग भाव अन्दर परन्तु वह बाह्य है। बाह्य है न वह तो? इसकी चीज़ कहाँ है? और यह ज्ञेय भिन्न-भिन्न भासित होने पर मेरा ज्ञान भी भिन्न-भिन्न (भेदरूप) हुआ, ऐसा विकल्प, वह अनन्तानुबन्धी का विकल्प है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सूक्ष्म!

इस प्रकार संकल्प-विकल्प का स्वरूप जानना चाहिए। वहाँ द्रव्यसंग्रह में यह (आया), सर्वत्र यह (अर्थ) करना। संकल्प-विकल्प का अर्थ सर्वत्र यह जानना, ऐसा लिखा है। सर्वत्र। जहाँ-जहाँ संकल्प-विकल्प का अर्थ ऐसा करना। उसमें ऐसा है, यहाँ... देखो! इसमें है, लो। यह इसमें है। सर्वत्र ज्ञातव्यं। संकल्प-विकल्प का अर्थ सर्वत्र ज्ञातव्यं। मूल तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वरूव वह मैं। इसके अतिरिक्त परवस्तु वह मैं, यह मिथ्यात्व और संकल्प-विकल्प का भाव है। आहाहा! समझ में आया? यह १६ गाथा हुई।

गाथा - १७

अथ नित्यनिरञ्जनज्ञानमयपरमानन्दस्वभावशान्तशिवस्वरूपं दर्शयन्नाह –

१७) णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ।।१७।।

नित्यो निरञ्जनो ज्ञानमयः परमानन्दस्वभावः।
य ईदृशः स शान्तः शिवः तस्य मन्यस्व भावम्।।१७।।

णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंदसहाउ द्रव्यार्थिकनयेन नित्योऽविनश्वरः, रागादि-कर्ममलरूपाञ्जनरहितत्वान्निरञ्जनः, केवलज्ञानेन निर्वृत्तत्वात् ज्ञानमयः, शुद्धात्मभावनोत्थ-वीतरागानन्दपरिणतत्वात्परमानन्दस्वभावः जो एहउ सो संतु सिउ य इत्थंभूतः स शान्तः शिवो भवति हे प्रभाकरभट्ट तासु मुणिज्जहि भाउ तस्य वीतरागत्वात् शान्तस्य परमानन्दसुखमयत्वात् शिवस्वरूपस्य त्वं जानीहि भावय। कं भावय। शुद्धबुद्धैकस्वभावमित्यभिप्रायः।।१७।।

आगे नित्य निरंजन ज्ञानमयी परमानंदस्वभाव शांत और शिवस्वरूप का वर्णन करते हैं –

जो नित्य अंजन रहित ज्ञानानन्द परम स्वभावमय।
हैं ही उसे ही शान्त शिवमय मान और स्वभावमय।।१७।।

अन्वयार्थ :– [नित्यः] द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी [निरञ्जनः] रागादिक उपाधि से रहित अथवा कर्ममलरूपी अंजन से रहित [ज्ञानमयः] केवलज्ञान से परिपूर्ण और [परमानंदस्वभावः] शुद्धात्म भावना कर उत्पन्न हुए वीतराग परमानंदकर परिणत है, [यः ईदृशः] जो ऐसा है, [सः] वही [शान्तः शिवः] शांतरूप और शिवस्वरूप है, [तस्य] उसी परमात्मा का [भावं] शुद्ध-बुद्ध स्वभाव [जानाहि] हे प्रभाकरभट्ट, तू जान अर्थात् ध्यान कर।।१७।।

गाथा - १७ पर प्रवचन

नित्य निरंजन ज्ञानमयी परमानन्दस्वभाव शान्त और शिवस्वरूप का वर्णन करते हैं। प्रगट दशा जो परमात्मा की है, उसका वर्णन करते हैं। परन्तु ऐसा मैं स्वभाव

से—दृष्टि से, दृष्टि की अपेक्षा से द्रव्यार्थिकनय से ऐसा ही मैं हूँ। भगवान पर्याय में प्रगट है, ऐसा मैं ही अन्दर हूँ। आहाहा! १७वाँ।

१७) णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ।।१७।।

यहाँ दूसरा कोई शिवस्वरूप अनादि का पृथक् है, जगत का कर्ता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं।

अन्वयार्थ :- द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी.... कौन? परमात्मा चित्स्वरूप वह। **द्रव्यार्थिकनयकर अविनाशी रागादिक उपाधि से रहित अथवा कर्ममलरूपी अंजन से रहित.... 'निरंजनः'** है न? **'ज्ञानमयः' केवलज्ञान से परिपूर्ण और शुद्धात्मभावनाकर उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्दकर परिणत हैं,...** ओहो! वर्तमान लिया है न? परमात्मा शुद्ध दशा। **केवलज्ञान से परिपूर्ण...** परमात्मा और **शुद्धात्मभावनाकर उत्पन्न हुए वीतराग परमानन्दकर परिणत हैं,...** आहाहा! **जो ऐसा है, वही शान्तरूप और शिवस्वरूप है, उसी परमात्मा का शुद्ध बुद्ध स्वभाव हे प्रभाकर भट्ट! तू जान...** कोई इसका कर्ता शिव है, यह नहीं। ऐसा शिव का स्वरूप है। परमात्मा सिद्ध हो गये। शान्त शिव।

उसी परमात्मा का... 'भावं जानाहि' शुद्ध बुद्ध स्वभाव... शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव ... है न संस्कृत में? शुद्ध-बुद्ध इस टीका में बहुत जगह आता है। 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम, दूसरा कितना कहें कर विचार तो पाम।' आहाहा! '**जानाहि**' — इसे तू जान और उसका तू ध्यान करे। आहाहा! भगवान परमात्मस्वरूप प्राप्त है, उसे जान और उसका ध्यान कर। दृष्टि द्रव्यार्थिकनय से तू ही ऐसा है। आहाहा! पर्याय में वस्तु की महत्ता भासित होना, यह सम्यग्दर्शन है। यह क्या कहा? पर्याय में अपनी महत्ता, पूर्णता, वस्तु की पूर्णता भासित होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, पाचनशक्ति है। सम्यग्दर्शन में पाचनशक्ति है।

जैसे अग्नि में अनाज पकाने की शक्ति है, प्रकाशशक्ति है और लकड़ी को जलाने की दाहकशक्ति है। पाचक, प्रकाशक और दाहक अग्नि है। जयसेनाचार्य की टीका में है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र (शक्ति

है)। सम्यग्दर्शन में पाचकशक्ति है। पूर्ण स्वरूप की प्रतीति—पाचन करता है। समझ में आया? अर्थात् कि द्रव्यस्वभाव पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण है। पर्याय में उसे समयग्दर्शन पाचक करता है, उसे पचाता है। है पर्याय, परन्तु पूर्ण को पचाती है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान प्रकाशक है। जैसे अग्नि में प्रकाश है। वह द्रव्य को प्रकाशित करे, पर्याय को प्रकाशित करे। और चारित्र का स्वभाव दाहक है। जैसे अग्नि लकड़ी को (ईंधन को) जला डालती है। इसी प्रकार स्वरूप की रमणता अशुद्धता को जलाकर राख कर डालती है अर्थात् अशुद्धता का नाश होता है। आहाहा! ऐसी उसमें त्रिकाली शक्ति पड़ी है। उसे प्रगट करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? ऐसी बातें, इसलिए लोगों को (कठिन लगती है)। कितना खिचड़ा भरा है इसमें, पर का यह करना और पर का यह करना। भगवान ने स्वाध्याय को तप कहा है। स्वाध्याय—वांचन करना और मनन कना। अरे!

यहाँ तो कहते हैं, पठन-पाठन करना, वह सब विकल्प—शुभराग है। अन्तर के आनन्द के नाथ को सम्हालकर इसमें स्थिर होना, यह वास्तविक ध्यान और तप है। यह स्वाध्याय है। स्व-अध्याय। स्व का... किया। आहाहा! उसमें कहा है न कि स्वाध्याय तप है। आते हैं न बारह प्रकार के (तप)। स्वाध्याय तप। वह .... तप नहीं। यह तो उपचार से बात है।

मुमुक्षु : स्वाध्याय परमं तप।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम तप, परन्तु कौन सा स्वाध्याय? यह अन्तर के आनन्द के नाथ को स्व में-अन्तर ध्यान में ले, वह तप है। यह स्वाध्याय तो विकल्प है। ऐसी बात है। यह १७वीं गाथा हुई।

गाथा - १८

पुनश्च किंविशिष्टो भवति –

१८) जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ।।१८।।

यो निजभावं न परिहरति यः परभावं न लाति।
जानाति सकलमपि नित्यं परं स शिवः शान्तो भवति।।१८।।

यः कर्ता निजभावमनन्तज्ञानादिस्वभावं न परिहरति यश्च परभावं कामक्रोधादिरूप-मात्मरूपतया न गृह्णाति। पुनरपि कथंभूतः। जानाति सर्वमपि जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुस्वभावं न केवलं जानाति द्रव्यार्थिकनयेन नित्य एव अथवा नित्यं सर्वकालमेव जानाति परं नियमेन। स इत्थंभूतः शिवो भवति शान्तश्च भवतीति। किं च अयमेव जीवः मुक्तावस्थायां व्यक्तिरूपेण शान्तः शिवसंज्ञां लभते संसारावस्थायां तु शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शक्तिरूपेणेति। तथा चोक्तम् –'परमार्थनयाय सदा शिवाय नमोऽस्तु'। पुनश्चोक्तम्– 'शिवं परमकल्याणं निर्वाणं शान्तमक्षयम्। प्राप्तं मुक्तिपदं येन स शिवः परिकीर्तितः।।' अन्यः कोऽप्येको जगत्कर्ता व्यापी सदा मुक्तः शान्तः शिवोऽस्तीत्येवं न। अत्रायमेव शान्तशिवसंज्ञः शुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः।।१८।।

आगे फिर उसी परमात्मा का कथन करते हैं –

निज भाव को ना छोड़ता परभाव ना लेता कभी।
पर जानता सम्पूर्ण को शिव शान्त शाश्वत है वही।।१८।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो [निज भावं] अनंतज्ञानादिरूप अपने भावों को [न परिहरति] कभी नहीं छोड़ता [यः] और जो [परभावं] कामक्रोधादिरूप परभावों को [न लाति] कभी ग्रहण नहीं करता है, [सकलमपि] तीन लोक तीन काल की सब चीजों को [परं] केवल [नित्यं] हमेशा [जानाति] जानता है, [सः] वही [शिवः] शिवस्वरूप तथा [शांतः] शांतस्वरूप [भवति] है।

भावार्थ :– संसार अवस्था में शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा हैं, व्यक्तिरूप से नहीं है। ऐसा कथन अन्य ग्रंथों में भी कहा है– 'शिवमित्यादि'

अर्थात् परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप, महाशांत अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है, वही शिव है, अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्वव्यापी सदा मुक्त शांत नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है। यह शुद्धात्मा ही शांत है, शिव है, उपादेय है।।१८।।

गाथा - १८ पर प्रवचन

आगे उसी परमात्मा का कथन करते हैं—सादी भाषा है।

१८) जो णिय-भाउ ण परिहरइ जो पर-भाउ ण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिच्चु पर सो सिउ संतु हवेइ।।१८।।

यह आता है, समयसार में। अपना भाव छोड़ता नहीं और पर को ग्रहण करता नहीं। यह (आता है)।

अन्वयार्थ :- जो अनन्तज्ञानादिरूप अपने भावों को कभी नहीं छोड़ता.... आहाहा! स्वरूप जो अनन्त ज्ञान, आनन्दस्वभाव परमात्मा अपना, उसे कभी छोड़ता नहीं। आहाहा! ... आता है न? सर्वविशुद्ध में। अपने भाव को छोड़ता नहीं और परभाव को ग्रहता नहीं। स्वरूप है। स्वरूप आनन्दकन्द प्रभु, उसे छोड़ता नहीं और रागादि को ग्रहता नहीं। **कभी नहीं छोड़ता और जो कामक्रोधादिरूप परभावों को कभी ग्रहण नहीं करता है,...** आहाहा! **तीन लोक तीन काल की सब चीज़ों को केवल हमेशा जानता है,...** परमात्मा लेना है न? प्रगट दशा। **वही शिवस्वरूप तथा शान्तस्वरूप है।** लो! उसमें था न? शान्त शिव था न उसमें? १७ में। यहाँ यह है। यह शिव और शान्त है। दूसरा शिव कोई जगत का कर्ता है, ऐसा नहीं है। अनादि से कहते हैं न?

भावार्थ :- संसार अवस्था में शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर सभी जीव शक्तिरूप से परमात्मा है। आहाहा! अभव्य और एकेन्द्रिय और निगोद के सब जीव शक्तिरूप से परमात्मा ही हैं। स्वभाव अपेक्षा से परमात्मा है। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से परमात्मा ही है। आहाहा! परम स्वरूप है, वह परमात्मा है। **व्यक्तिरूप से नहीं है।** अनन्त शक्तिरूप है, प्रगट नहीं। **ऐसा कथन अन्य ग्रन्थों में भी कहा है—'शिवमित्यादि' अर्थात्**

परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप,... मोक्ष, महाशान्त अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है,.... देखो! आहाहा! शिवमलयमरु... नहीं आता? णमोत्थुणं में आता है। सामायिक के पाठ में आता है। शिवमलयमरुमणंत... वह शिवस्वरूप है। शिव अर्थात् उपद्रवरहित शान्त... शान्त। अकेली उपशमधारा । अकषायपरिणति। अकेला अकषाय का परिणमन है। आहाहा!

ऐसे मुक्ति-पद को जिसने पा लिया है,... परमकल्याणरूप, निर्वाणरूप, महाशान्त अविनश्वर ऐसे मुक्ति-पद को... यह मुक्ति-पद है, वह कोई नाशवान नहीं है। मुक्ति हुई, वह हुई। **वही शिव है, अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्वव्यापी सदा मुक्त शान्त....** नहीं। यह सिद्ध करना है। **अन्य कोई, एक जगत्कर्ता सर्व व्यापी सदा मुक्त शान्त नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है।** आहाहा! भगवान के पास जानेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। चुन्नीलाल है न? .... भगवत् के पास जाने की तैयारी हो गयी। थोड़ी स्थिति ऐसी हो गयी शरीर की। कौन भगवान? सर्वव्यापक। ऐसा। अरे!

यहाँ कहते हैं .... आत्मा सर्वव्यापक जगत का कर्ता कोई है नहीं। सदा मुक्त, सदा अनादि का मुक्त, ऐसा कोई है नहीं। शिवरूप **नैयायिकों का तथा वैशेषिक आदि का माना हुआ नहीं है। यह शुद्धात्मा ही शान्त है,...** प्रगटरूप से परमात्मा शान्त हैं। शक्तिरूप से आत्मा शान्त है। **शिव है, उपादेय है।** अब वे श्लोक आये।

गाथा - १९-२१

अथ पूर्वोक्तं निरञ्जनस्वरूपं सूत्रत्रयेण व्यक्तीकरोति –

१९) जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु।।१९।।

२०) जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु।।२०।।

२१) अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ।।२१।। तियलं।

यस्य न वर्णो न गन्धो रसः यस्य न शब्दो न स्पर्शः।
यस्य न जन्म मरणं नापि नाम निरञ्जनस्तस्य।।१९।।

यस्य न क्रोधो न मोहो मदः यस्य न माया न मानः।
यस्य न स्थानं न ध्यानं जीव तमेव निरञ्जनं जानीहि।।२०।।

अस्ति न पुण्यं न पापं यस्य अस्ति न हर्षो विषादः।
अस्ति न एकोऽपि दोषो यस्य स एव निरञ्जनो भावः।।२१।। त्रिकलम्।

यस्य मुक्तात्मनः शुक्लकृष्णरक्तपीतनीलरूपपञ्जप्रकारवर्णो नास्ति, सुरभिदुरभिरूपोद्विप्रकारो गन्धो नास्ति, कटुकतीक्ष्णमधुराम्लकषायरूपः पञ्चप्रकारो रसो नास्ति, भाषात्मकाभाषात्मकादिभेदभिन्नः शब्दो नास्ति, शीतोष्णस्निग्धरूक्षगुरुलघुमृदुकठिनरूपोऽष्टप्रकारः स्पर्शो नास्ति, पुनश्च यस्य जन्म मरणमपि नैवास्ति तस्य चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मनो निरञ्जनसंज्ञां लभते।। पुनश्च किंरूपः स निरञ्जनः। यस्य न विद्यते। किं किं न विद्यते। क्रोधो मोहो विज्ञानाद्यष्टविधमदभेदो यस्यैव मायामानकषायो यस्यैव नाभिहृदयललाटादिध्यानस्थानानि चित्तनिरोधलक्षणध्यानमपि यस्य न तमित्थंभूतं स्वशुद्धात्मानं हे जीव निरञ्जनं जानीहि। ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपसमस्तविभावपरिणामान् त्यक्त्वा स्वशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वानुभवेत्यर्थः।। पुनरपि किंस्वभावः स निरञ्जनः। यस्यास्ति न। किं किं नास्ति। द्रव्यभावरूपं पुण्यं पापं च।। पुनरपि किं नास्ति। रागरूपो हर्षो द्वेषरूपो

विषादश्च। पुनश्च। नास्ति क्षुधाद्यष्टादशदोषेषु मध्ये चैकोऽपि दोषः। स एव शुद्धात्मा निरञ्जन इति हे प्रभाकरभट्ट त्वं जानीहि। *स्वशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणवीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वानुभवेत्यर्थः। किं च। एवंभूतसूत्रत्रयव्याख्यातलक्षणो निरञ्जनो ज्ञातव्यो न चान्यः कोऽपि निरञ्जनोऽस्ति परकल्पितः। अत्र सूत्रत्रयेऽपि विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो योऽसौ निरञ्जनो व्याख्यातः स एवोपादेय इति भावार्थ :।।१९-२१।।

आगे पहले कहे हुए निरंजनस्वरूप को तीन दोहा-सूत्रों से प्रगट करते हैं -

जिसके नहीं है वर्ण रस ना गन्ध ना स्पर्श ना।
ना शब्द जानो निरंजन जिसके जनम ना मरण ना।।१९।।

जिसके न क्रोध न मोह मद ना मान माया है नहीं।
स्थान भी ना ध्यान ना जानो निरंजन है वही।।२०।।

जिसके नहीं है पुण्य ना ही पाप हर्ष विषाद ना।
वह ही निरंजन भाव जिसमें दोष होते रंच ना।।२१।।

अन्वयार्थ :- [यस्य] जिस भगवान् के [वर्णः] सफेद, काला, लाल, पीला, नीलास्वरूप पाँच प्रकार वर्ण [न] नहीं है, [गंधः रसः] सुगंधदुर्गन्धरूप दो प्रकार की गंध [न] नहीं है, मधुर, आम्ल (खट्टा), तिक्त, कटु, कषाय (क्षार) रूप पाँच रस नहीं हैं [यस्य] जिसके [शब्दः न] भाषा अभाषारूप शब्द नहीं है अर्थात् सचित्त-अचित्त-मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है, सात स्वर नहीं हैं, [स्पर्शः न] शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, गुरु, लघु, मृदु, कठिनरूप आठ तरहका स्पर्श नहीं है, [यस्य] और जिसके [जन्म न] जन्म, जरा नहीं है, [मरणं नापि] तथा मरण भी नहीं है [तस्य] उसी चिदानंद शुद्धस्वभाव परमात्मा की [निरंजनं नाम] निरंजन संज्ञा है, अर्थात् ऐसे परमात्मा को ही निरंजनदेव कहते हैं। फिर वह निरंजनदेव कैसा है - [यस्य] जिस सिद्ध परमेष्ठी के [क्रोधः न] गुस्सा नहीं है, [मोहः मदः न] मोह तथा कुल जाति आदि आठ तरह का अभिमान नहीं है, [यस्य माया न मानः न] जिसके माया व मान कषाय नहीं है, और [यस्य] जिसके [स्थानं न] ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक आदि नहीं है [ध्यानं न] चित्त के

* स्वशुद्ध आत्मा को वीतराग निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर अनुभव यह अर्थ है।

रोकनेरूप ध्यान नहीं है अर्थात् जब चित्त ही नहीं है तो रोकना किसका हो, [स एव] ऐसे निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान। सारांश यह हुआ कि अपनी प्रतिसिद्धता (बड़ाई) महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना और देखे-सुने भोग इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर उस शुद्धात्मा का अनुभव कर। पुनः वह निरंजन कैसा है – [यस्य] जिसके [पुण्यं न पापं न अस्ति] द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं, तथा पाप नहीं है, [हर्षः विषादः न] रागद्वेषरूप खुशी व रंज नहीं हैं, [यस्य] और जिसके [एकः अपि दोषः] क्षुधा (भूख) आदि दोषों में से एक भी दोष नहीं है [स एव] वही शुद्धात्मा [निरंजनः] निरंजन है, ऐसा तू [भावय] जान।

भावार्थ :- ऐसे निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थित होकर तू अनुभव कर। इस प्रकार तीन दोहों में जिसका स्वरूप कहा गया है, उसे ही निरंजन जानो, अन्य कोई भी परिकल्पित निरंजन नहीं है। इन तीनों दोहों में जो निर्मल ज्ञानदर्शनस्वभाववाला निरंजन कहा गया है, वही उपादेय है।।१९-२१।।

गाथा - १९-२१ पर प्रवचन

१९) जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजणु तासु।।१९।।

२०) जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय ण माणु।
जासु ण ठाणु ण झाणु जिय सो जि णिरंजणु जाणु।।२०।।

२१) अत्थि ण पुण्णु ण पाउ जसु अत्थि ण हरिसु विसाउ।
अत्थि ण एक्कु वि दोसु जसु सो जि णिरंजणु भाउ।।२१।। तियलं।

निरंजनस्वरूप को तीन दोहा-सूत्रों से प्रगट करते हैं- जिस भगवान के सफेद, काला, लाल, पीला, नीलास्वरूप पाँच प्रकार वर्ण नहीं है,... भगवान को किसी प्रकार का वर्ण नहीं है। रंग-रंग। रंग के पाँच प्रकार। एक अर्जिका यहाँ आयी थी। उससे किसी ने पूछा कि आत्मा कैसा ? पहला लाल और बाद में हो सफेद। पहले आत्मा

लाल दिखता है, फिर आगे बढ़ जाये तो सफेद दिखता है। अर्जिका कहे। कुछ खबर नहीं होती। सीधे बाहर में वस्त्र बदले, इसलिए हो गये त्यागी। रोटियाँ तो शुरु हो जाये।

मुमुक्षु : त्यागी तो है ही अनादि का।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी ही है आत्मा का। आत्मा का त्यागी ही है। आहाहा!

यहाँ कहा न? उपादान ... है कब? ऐसा त्रिकाली आत्मा, वह उपादेय है, तब उसे मिथ्यात्वादि का त्याग होता है। समझ में आया? बाह्य त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही कहाँ? आहाहा! कहा न? अपना जो स्वभाव है नित्य, ध्रुव, उसको इसने कभी छोड़ा नहीं और रागादि भाव है, उन्हें कभी इसने ग्रहण नहीं किया। परवस्तु तो ग्रही नहीं, परन्तु रागादि भी जिसने ग्रहण नहीं किये। ऐसा चैतन्यबिम्ब प्रभु, वही व्यक्ति का विषय और वही उपादेय है। और परमात्मपद से प्रगट पर्याय है, उसे भी उपादेय कहकर कहा गया है। आहाहा! आत्मा सफेद-श्वेत नहीं है, ऐसा कहते हैं। सफेद है न? सफेद-श्वेत नहीं। सफेद तो रंग है। काला नहीं, लाल नहीं। आँख बन्द करे और अन्दर दिखे न लाल? वह तो जड़ की अवस्था है। आँख के नीचे ऐसे दवाब करे, तब ऐसा दिखे न? लाल, पीले, वह जड़ है। पीला नहीं, हरा नहीं। पाँच प्रकार का वर्ण नहीं।

गन्ध, रस, सुगन्ध, दुर्गन्धरूप दो प्रकार की गन्ध नहीं है,... सुगन्ध-दुर्गन्ध। आत्मा का ध्यान करे, तब सुगन्ध आवे। गन्ध ... उसमें है नहीं। वह तो जड़ की अपेक्षा है। आहाहा! आनन्द की गन्ध है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे। वहाँ गन्ध नहीं तथा रस नहीं। यह तो अपने आ गया, नहीं? ४९ (गाथा)। **मधुर...** मीठा रस आत्मा में नहीं। मीठा-मीठा शक्कर का रस आत्मा में नहीं। **आम्ल (खट्टा),...** खट्टा (रस) आत्मा में नहीं। **तिक्त,...** कड़वा रस आत्मा में नहीं। **कटु,...** चरपरा। चरपरा और कड़वा। आहाहा! और **कषायला (क्षार) रूप पाँच रस नहीं हैं...** आहाहा! भगवान तो अरूपी है। यह तो आ गया है ४९में। आहाहा! वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तो जड़ के हैं। वर्ण, गन्ध आदि गुण जड़ के और उसकी रूप आदि जो पर्याय (होती है), वह तो जड़ की पर्याय है। सफेद, काली तो पर्याय है। वर्ण, वह गुण है और सफेद आदि तो पर्याय है। वह गुण और पर्याय दोनों आत्मा में नहीं। आहाहा! आत्मा में आनन्दगुण और उसकी पर्याय का वेदन, वह है उसमें। आहाहा!

जिसके भाषा अभाषारूप शब्द नहीं है,... अपने आ गया है ४९ में। शब्द की पर्याय आत्मा में नहीं। भाषा अन्दर होती है किसमें? जड़ में। आहाहा! **भाषा अभाषारूप शब्द...** भाषारूप है न यह? ... अभाषा है। आवाज आवे, वह अभाषा है। वह सब पर्याय जड़ की है। आत्मा में नहीं है। वह शब्द की पर्याय जड़ की है।

मुमुक्षु : जड़ की है, आत्मा के निमित्त से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा से बिल्कुल नहीं होती। जड़ से होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : जड़ को कहाँ खबर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं, इसलिए उसका परिणमना नहीं? वस्तु टिकी रहकर बदलना उसका स्वभाव है या नहीं? भाषारूप से परिणमता है। उसे जानने की आवश्यकता है? तो परिणमे ऐसा है? तो जाननेवाला... सिद्ध होगा। सभी द्रव्य बदलते हैं अपनी जड़ की शक्ति से बदलते हैं। आहाहा! देखो न! यह परमाणु की पर्याय नहीं थी, वह बदली है। आहार रक्तरूप हुई है।

मुमुक्षु : खाया अनाज और परिणमा रक्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिणमी पर्याय। यह परिणमी परमाणु की पर्याय। परमाणु कायम रहकर रक्त (रूप हुए)। ... एक व्यक्ति ने कहा था, स्त्री है वह बालकों को बड़ा करने का कारखाना है। गर्भ में हो तब ... इसी प्रकार यह ... अनाज को रक्त कर डाले, ऐसा यह कारखाना है। आहाहा! शब्द नहीं।

अर्थात् सचित्त अचित्त मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है,... आहाहा! शब्द तो सचेत नहीं परन्तु जीव बोलता है, इतनी अपेक्षा से सचित कहा जाता है। जैसे यह सचेत शरीर कहा जाता है न जीव हो (तब)? सचेत शरीर, ऐसा कहा जाता है न? वह तो जीव है, इतनी अपेक्षा से। शरीर तो जड़ ही है। इसी प्रकार भाषा तो जड़ ही है। परन्तु निमित्त से... व्यवहार से... सचेत शरीर नहीं कहते? वनस्पति का सचेत शरीर है। इसका अर्थ (यह कि) शरीर तो जड़ है परन्तु अन्दर आत्मा है, उसकी अपेक्षा लेकर शरीर को सचेत कहा जाता है। इसी प्रकार भाषा को कहते हैं।

सचित्त अचित्त मिश्ररूप कोई शब्द नहीं है, सात स्वर नहीं है,... आहाहा! सात

प्रकार के स्वर नहीं। शब्द नहीं न? स्वर-स्वर व्यंजन, आवाज, वह आत्मा में नहीं है। शार्दुलविक्रीडित छन्द बोले, लो! बसंततिलका। यह सब स्वर जड़ के हैं। आत्मा में कहाँ है? स्पर्श नहीं। शीतल, गर्म, स्पर्श आत्मा में नहीं हैं। यह सब पर्याय ली है। **शीत, उष्ण, स्निग्ध,...** चिकनी। **रूक्ष,...** रूखी। **गुरु, लघु, मृदु, कठिनरूप आठ तरह का स्पर्श (आत्मा में) नहीं है,...** शीतल तो आत्मा है या नहीं? शीतल स्वभाव। वह तो शीतल अपना आनन्दस्वभाव उसे है। शीतल, वह कहीं आत्मा में नहीं है।

और जिसके जन्म, जरा नहीं है,... भगवान जन्मे कैसे और आत्मा मरे कैसे? आहाहा! **उसी चिदानन्द शुद्धस्वभाव परमात्मा की...** आहाहा! चिदानन्द, ज्ञानानन्द ऐसे शुद्ध स्वभाव परमात्मा की **निरंजन संज्ञा है,...** अंजन नहीं। यह सब मल (नहीं है), निरंजन है। **अर्थात् ऐसे परमात्मा को ही निरंजनदेव कहते हैं।** ऐसे परमात्मा को निरंजनदेव कहते हैं। आहाहा! **फिर वह निरंजनदेव कैसा है?—जिस सिद्ध परमेष्ठी के गुस्सा नहीं है,....** देखा! सिद्ध परमेष्ठी लिये। जिनकी प्रगट दशा है। **गुस्सा नहीं है, मोह...** नहीं है। कुल नहीं, जाति नहीं। **कुल जाति आदि तरह का अभिमान नहीं है,...** मद है न? मद। जाति का मद, कुल का मद,... का मद, ईश्वर का मद उन्हें नहीं है।

जिसके माया व मान कषाय नहीं है, और जिसके ध्यान के स्थान नाभि, हृदय, मस्तक आदि नहीं है... लो। ध्यान का स्थान नाभि, हृदय, मस्तक इत्यादि नहीं। **चित्त के रोकनेरूप ध्यान नहीं है,...** कहाँ है? परमात्मा को ध्यान कहाँ है? सर्वज्ञ हुए, उन्हें ध्यान नहीं है। **अर्थात् जब चित्त ही नहीं है तो रोकना किसका हो,...** आहाहा! **ऐसे निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान।** है तो सिद्ध परमेष्ठी ऐसे। ऐसा तू है। आहाहा! **निजशुद्धात्मा को हे जीव, तू जान।** निज शुद्धात्मा को, हे जीव! तू ऐसा जान। आहाहा! नियमसार में लिया है न? प्रायशिचत्त की व्याख्या में आत्मा प्रायश्चित्तस्वरूप है, ऐसा लिया है। प्राय... ज्ञानस्वरूप है। प्रायश्चित्त स्वरूप ही आत्मा है। प्रायश्चित्त की पर्याय प्रगट होती है, वह तो पर्याय में। परन्तु वस्तु प्रायश्चित्तस्वरूप ही है। ऐसा कहकर जो दशा प्रगट होती है, वह स्वरूप से ही वह तो त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वस्तु को प्रायश्चित्त कहा। क्योंकि प्रायश्चित्त की निर्मल पर्याय प्रगट होती है न? निर्मल पर्याय है, वैसा ही त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

नियम नहीं लिया? नियमसार। मोक्ष का मार्ग जो है, वह कार्यनियमसार है। मोक्ष का मार्ग। परन्तु नियम जो पर्याय में है। फिर वह त्रिकाली कारणनियम है। जैसी पर्याय पूर्ण हुई, वैसा ही उसका पूर्ण स्वरूप कारणनियम त्रिकाल है। त्रिकाली को कारणनियम कहा। त्रिकाली को कारणआत्मा, कारणपरमात्मा कहा। आहाहा! चेतना .... त्रिकाली चेतना, ज्ञानचेतना त्रिकाली है। वहाँ पर्याय में ज्ञानचेतना एकाग्र होती है पर्याय। ज्ञानचेतना त्रिकाल है। अरे! नियमसार में लिया है।

ऐसा आत्मा है—ऐसा तू बराबर जान, निर्णय कर—ऐसा कहते हैं। है? **ऐसे निजशुद्धात्मा को...** निज—अपने आत्मा को, **हे जीव! तू जान।** आहाहा! **सारांश यह हुआ कि अपनी प्रतिसिद्धता (बड़ाई) महिमा,...** छोड़ दे। मैं बड़ा हूँ... बड़ा हूँ... अपनी बढ़ाई करने का भाव है, वह अभिमान है। आहाहा! **बड़ाई (महिमा), अपूर्व वस्तु का मिलना,....** आहाहा! कभी मिला नहीं, वह मिलने पर प्रसन्न... प्रसन्न हो जाता है। छोड़ दे यह सब अब, ऐसा तो अनन्त बार मिला है।

और देखे-सुने भोग.... देखे हुए, सुने हुए भोग। **इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर...** यह आत्मा को जाने किस प्रकार? कहते हैं। ऐसा आत्मा है, उसे जान, किस प्रकार? आहाहा! **महिमा, अपूर्व वस्तु का मिलना, देखे-सुने भोग इनकी इच्छारूप सब विभाव परिणामों को छोड़कर अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप...** शुद्धात्मा त्रिकाली, इसका वर्तमान अनुभूतिस्वरूप **निर्विकल्पसमाधि में ठहरकर उस शुद्धात्मा का अनुभव कर।** ऐसी बात है। जान! लिया था न?

मुमुक्षु : ....सारांश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : '**सो जि णिरंजणु जाणु।**' है न, २० में है। १९ में भी है। '**णाउ णिरंजणु तासु**' '**णिरंजणु जाणु**' '**णिरंजणु भाउ**' है न? प्रत्येक गाथा का अन्तिम पद है। आहाहा!

अंजन अर्थात्.... आदि का मैल उसमें नहीं है, बढ़ाई, शक्ति आदि नहीं। पर को छोड़ दे। भगवान पूर्णानन्द के नाथ को अन्तर्मुख की निर्विकल्प समाधि में आकर उसे

अनुभव कर। आहाहा! भारी जवाब, भाई! **अपने शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप...** है न? आहाहा! अनुभूति अर्थात् अनुभव। 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावै विश्राम। रस स्वादत सुख उपजे, अनुभव ताको नाम।' आहाहा! **शुद्धात्मा की अनुभूतिस्वरूप निर्विकल्प समाधि में...** शिष्य को गुरु कहते हैं। शिष्य कहीं मुनि नहीं अथवा केवली नहीं या आठवें गुणस्थान में चढ़ा नहीं। कहते हैं न? निर्विकल्पसमाधि आठवेंवाला (होता है)। यह तो नीचे की बात है। यह तो अपने आ गया न! विचिक्षण की व्याख्या आ गयी। निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति है, उसे विचिक्षण अर्थात् अन्तरात्मा कहा जाता है। चौथे गुणस्थान से अन्तरात्मा, निर्विकल्प समाधि से प्राप्त है, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया था न ... नहीं आया था? विचक्षण अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा चौथे से बारहवें और उसे निर्विकल्पसमाधि... यहाँ यह कहते हैं। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसकी अनुभूति से निर्विकल्प समाधि में रहकर ध्यान कर। उसे पहिचान, ऐसा कहते हैं। अनुभव कर। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। बाकी सब बातें अनेक प्रकार की आवें। भगवान शुद्ध आत्मा वस्तु द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल परमात्मस्वरूप ही है। शक्तिरूप। उसका अनुभूतिस्वरूप ध्यान करके... आहाहा! उसके सन्मुख की दृष्टि करके विकल्प बिना शान्ति में **ठहरकर...** समाधि अर्थात् शान्त... शान्त... शान्त...। यह कषायभाव है, इतना असर होता है। आकुलता है, अशान्ति है। वह अशान्तपना छोड़कर शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसे शान्तभाव में **ठहरकर...** समाधि का अर्थ किया। **उस शुद्धात्मा का अनुभव कर।** लो! यह गृहस्थाश्रम में शिष्य को भी ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शिष्य तो मुनि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले मुनि हो। परन्तु मुनि कहे, मैं जानता नहीं, इसकी अपेक्षा... है। मैंने यह कभी किया नहीं। तुम मुझे सुनाओ, ऐसा वहाँ से लिया है न! पहले से यह लिया है। आहाहा! मैंने मेरे आनन्द के नाथ को कभी देखा नहीं, जाना नहीं, अनुभव नहीं किया तो यह बात करो न मुझे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कभी मैंने मेरा आत्मा, आनन्द के स्वभाव को जाना नहीं। आहाहा!

इसका प्रश्न करते हैं। लोगों को ऐसा लगता है कि यह तो सब निश्चय है। परन्तु निश्चय चौथे में निश्चय की बात आती है। चौथे गुणस्थान में भी पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ, उसके सन्मुख होकर, निर्विकल्प समाधि द्वारा उसमें स्थिर होकर, उसे अनुभव कर। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मा का अनुभव कर... शुद्धात्मा का अनुभव अर्थात्? कहीं त्रिकाल का वेदन नहीं है। परन्तु शुद्धात्मा-सन्मुख हुआ, उसे शुद्धात्मा का अनुभव कहने में आता है। है तो पर्याय का अनुभव। आहाहा! इस ओर राग और द्वेष का जो अनुभव था, पर दिशा सन्मुख ढलने से पुण्य और पाप का जो अनुभव था, वह विकारी अनुभव था। इस ओर ढलने पर निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर अनुभव कर। यह वस्तु तो वस्तु है। वस्तु के सन्मुख होकर शान्ति प्रगट हुई, उसे निर्विकल्प आत्मा का ध्यान और अनुभव किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें! जादवजीभाई! कभी कलकत्ता में कहीं थी नहीं।

शुद्ध चैतन्यघन वस्तु पड़ी है या नहीं? उसे अन्तर में स्वभावसन्मुख होकर विकल्परहित शान्ति में स्थिर होकर उसे अनुभव कर। आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? यहाँ ऐसा नहीं कहा कि आओ... स्थिर, राग पहले आवे व्यवहार और उसके बाद अनुभूति का ... करे, ऐसा कुछ कहा नहीं। वहाँ तो छोड़कर, ऐसा कहा। है न? विभाव परिणाम को छोड़कर। व्यवहार राग की मन्दता के भाव हैं, उन्हें छोड़कर। उन्हें रखकर यह निर्विकल्प अनुभव होता है?

मुमुक्षु : छोड़ने का उपाय बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ओर मुड़ा इसलिए वह छूट जाता है। उपदेश में तो क्या आवे? .... ऐसा है? ... परन्तु वसतु की ओर के अनुभव में स्थिर होने से राग छूट जाता है, उसे 'छोड़ा' ऐसा कहा जाता है।

पुनः वह निरंजन कैसा है जिसे द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं,... आहाहा! आत्मा में द्रव्यपुण्य और भावपुण्य दोनों नहीं हैं। भाव जो व्यवहार कहा, वह आत्मा में नहीं है, ऐसा कहते हैं। भावपुण्य राग-शुभराग, वह आत्मा में नहीं है। उसे छोड़कर, इसका ध्यान कर, ऐसा कहा है। आहाहा! **द्रव्यभावरूप पुण्य नहीं, तथा पाप नहीं है,...** आहाहा! **राग-द्वेषरूप खुशी...** राग से खुशी और द्वेष से रंज—खेद होना, यह इसमें नहीं है। राग से प्रसन्न होना और द्वेष से रंजक, ऐसा खेद होना, वह भी इसमें नहीं है। आहाहा!

और जिसके क्षुधा आदि दोषों.... अठारह दोष है न? **क्षुधा आदि दोषों में से एक भी दोष नहीं है....** आहाहा! क्षुधा-तृषा आदि वस्तु में कहाँ है? परमात्मा भी क्षुधा-तृषा रहित पर्याय में हो गये हैं। क्योंकि वस्तु में नहीं तो पर्याय में (रहित) हो गये हैं। आहाहा! वे कहे, भगवान को भी आहार है, शरीर को रोग है, दवा करते हैं। बहुत अन्तर कर दिया है। लोगों को... जैसा बनो। ... गँवावे। परमात्मा को मनुष्य जैसा बना दिया। उन्हें रोग हो, उसकी दवा ले और खाये। आहाहा! जिसके स्वरूप में ही क्षुधा-तृषा नहीं, उसकी परिणति जहाँ प्रगट हुई, उसे क्षुधा-तृषा कहाँ से हुई? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वही शुद्धात्मा निरंजन है, ऐसा तू जान। ऐसे निज शुद्धात्मा के...** वापस लिया, देखा! **ऐसे निज शुद्धात्मा के परिज्ञानरूप...** उसका ज्ञानरूप। सर्वथा प्रकार से, उसका ज्ञानरूप **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर....** आहाहा! **तू अनुभव कर।**

इस प्रकार तीन दोहों में जिसका स्वरूप कहा गया है, उसे ही निरंजन जानो,.... उसे निरंजन जान, ऐसा कहते हैं। तीनों में अन्त में निरंजन है न? **अन्य कोई भी परिकल्पित निरंजन नहीं है।** दूसरा कोई कल्पना करके निरंजन भगवान नहीं है। **इन तीन दोहों में जो निर्मल ज्ञान दर्शनस्वभाववाला निरंजन कहा गया है,...** निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव निरंजन, **वही उपादेय है।** लो! भावार्थ कहा। आगमार्थ, मतार्थ और यह भावार्थ। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव, ऐसा जो निरंजन भगवान आत्मा, वही धर्मी को उपादेय है, आदरणीय है, ग्रहण करनेयोग्य है। बाकी सब छोड़नेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)